चन्दामामा

मां - बच्चों का मासिक पत्र





हैदराबाद रियासत में कोई किसान रहा करता था। उसका विवाह हुआ। पत्नी गृहस्थी चलाने भी आ गई थी। परन्तु किसान अपनी पत्नी से बात न करता था। पत्नी कई दिन इस इन्तजार में रही कि पति की नाराज़गी कभी न कभी तो दूर होगी। परन्तु पति की नाराजगी न गई।

आखिर उसने अपनी हालत घर के पुरोहित को सुनाई। उसने थोड़ी देर सोचकर कहा-"इस बार जब आपके पति बाहर जाने लगेंगे, तब आप मुख में सुपारी रख, हाथ में पान ले, दरवाजे को रोककर खड़े हो जाना और कहना कि अगर चूना दोगे तो हट जाऊँगी। मुझे बताना कि तब वे क्या कहते हैं।"

पत्नी सुवारी मुख में रख, हाथ में पान लें, दरवाजे को रोक कर खड़ी हो गई। बाहर जाने के लिए पति आया।

"रास्ता छोड़ो" उसने कहा। "थोड़ा चूना दीजिये, चली जाऊँगी।" पत्नी ने कहा।

"पत्थर में अच्छी धान की फसल लगनी चाहिये, सोने की हँसिया से फसल काटनी है। स्त्री की चप्पल ढोनी हैं। लाल तालाब का पानी पीना है। तभी मैं तुम्हें चुना दे सकूँगा।" कहता कहता पति, उसको अलग धक्का देकर चला गया।

पत्नी ने पुराहित को यह सब सुनाया।

"आपके पास तो पथरीली जमीन है ही। उस पर मिट्टी डलवाइये। धान की फसल बड़ी होने पर सोने की हैं हँसिया से कटवाइये। फिर देखा जायगा।" पुरोहित ने कहा।

पत्नी ने किसानों को बुलवाकर पथरीली जमीन पर धान बोने के लिए कहा। किसानों ने वैसा ही किया। फसल कटवाने

के लिए दो सोने की हँसिये तैयार करवायी। फिर पुरोहित को बुलाकर पूछा तो उसने कोई सलाह दी। अगले दिन पत्नी आदमी का बेष घर, एक घोड़े पर सवार हो चार नौकरों के साथ, खेत में गई।

"किसके हुक्म पर यहाँ खेती हो रही है? बताओ। हजार रुपये जुर्माना देना होगा।" पत्नी ने कुलियों से कहा।

तुरन्त उसके पति के पास खबर भेजी गई। वह आया। पत्नी ने उससे कहा-"हम नवाब के कर्मचारी हैं। किसने आपको इस जमीन पर सेती करने की इजाजत दी है? चलिये। दप्तर चलें।"

पति पत्नी के पीछे पीछे पैदल चला। पत्नी घोड़े पर सवार थी। उसने अपनी एक एक चप्पल नीचे छोड़ दी। उसे खुश करने के लिए पति, खुद नप्पल लेकर, घोड़े के पीछे पीछे भागा। काफी दूर तक उसका पति, धूप में भागा था, इसलिये उसे प्यास लगने लगी। उसने लाल तालाब में पानी पीने के लिये पत्नी की इजाजत माँगी।

"तुम घर जाओ। इस बार तुम माफ किये जाते हो।" कहती कहती पत्नी किसी दूसरे रास्ते से घर पहुँच गई।

काफी देर बाद पति पर पहुँचा। वे खा पीकर जब बाहर जा रहे थे, तो मुख में सुपारी डाल, हाथ में पान ले, पत्नी दरवाजे को रोकते हुए खड़ी हो गई।

"रास्ता छोड़ो।" पति ने कहा।

"पत्थर पर धान बोया गया। सोने के हँसियों से फसल काटी गई। आपने अपनी स्त्री की चप्पलें ढोई। लाल तालाब का पानी भी पिया है। अब तो चूना देकर ही जाइये। कोई बात नहीं।" पत्नी ने कहा।

पति सब ताड़ गया। उस दिन से वह पत्नी से अच्छी तरह बातचीत करने लगा।





[१०]

[जब शिवदत्त को मालूम हुआ कि समरसेन युद्ध में घायल होकर मर गया था, वह अपने साथियों को लेकर जङ्गल में भाग गया था न? जङ्गल में एक जङ्गली जाती के मुखिया ने उसका आथित्य किया। उसी दिन रात को सैनिकों ने उनके गाँव पर हमला किया। उनमें से एक ने सुबाहु नामक, नरवादन के अनुचर के बारे में बताया। बाद में --]

"मन्दर देव! उस शत्रु सैनिक की बातों ने मुझे और जङ्गलियों के सरदार को अचरज में डाल दिया। मुझे शक होने लगा कि घटनाओं का क्रम कुछ बदल रहा था।" शिवदत्त ने कहा।

मन्दर देव ने सिर नीचे करके कहा- "आपका यह नया अनुभव सुन मुझे रोमाञ्च हो रहा है। बताइये, आगे क्या हुआ।" मन्दर देव ने आतुरता दिखाते हुए पूछा।

"वह जङ्गलियों का सरदार भी मेरी तरह आनेवाले खतरे के बारे में शङ्कित प्रतीत होता था। उसने मेरी तरफ मुड़कर कहा-'मालूम होता है कि इस जङ्गल में भी, जहाँ हमें न किसी से वास्ता था, न हम से ही किसी को कोई सम्बन्ध था, अब आप लोगों की गड़बड़ी, खलबली, पहुँच रही है। इस सुबाहु ने, जिसके बारे में यह सैनिक कह रहा है, भले ही नरवाहन की मदद की हो, पर उसको इस



तरह हमारे गाँवों को तहस-नहस करने का और यहाँ की शान्ति भङ्ग करने का कोई अधिकार नहीं है। ऐसा मुझे लगता है।" वह गुस्से में दाँत कटकटाने लगा।

"आजकल जिसकी लाठी उसकी भैंस। अगर तुम सब जङ्गली लोग मिलकर मुकाबला कर सको, तब कुछ फायदा हो सकता है। उसके लिए जो कुछ मुझसे बन सकता है, मैं करने के लिए तैयार हूँ।" मैने कहा।

थोड़ी देर में, उस गाँव में, जो कोई मी हथियार पकड़ सकते थे, वे सब मुखिया के पीछे पीछे, जिस तरफ जङ्गल जल रहा था, उस ओर चल दिये। मैं भी, अपने सैनिकों को लेकर, उनके साथ निकल पड़ा। अगर उन जङ्गलियों को मालूम हो जाय कि वे किस तरह अपनी शक्ति और स्वतन्त्रता खोने जा रहे थे, तो मैं उनकी मदद से दुश्मन से दबकर लोहा ले सकता हूँ; यह ख्याल मेरे मन में उठने लगा।

हम थोड़ी दूर ही गये थे कि तलवार, कटार आदि लेकर नरवाहन के अनेक सैनिक, एक जङ्गलियों के ग्राम में संहार का साण्डव नृत्य कर रहे थे। जो कुछ मिलता, वे नाश कर देते। और जब कभी कोई जङ्गली पकड़ा जाता, तो इसके हाथ बाँधकर, वे आगे ले जाते। उनको वे शायद शहरों में, गुलाम के तौर पर बेचना चाहते थे।

इस बीच में, जङ्गली सरदार के सैनिक, यकायक नरवाहन के सैनिकों पर शोर करते हुए कूद पड़े। नरवाहन के सैनिक इस भरोसे में थे कि वहाँ उनका मुकाबला करने वाला ही कोई न था, इसलिये उन्होंने जब इन जङ्गलियों को लड़ते देखा तो वे इधर उधर तितर-बितर होने लगे। जङ्गली अपने भालों से नरवाहन के सैनिकों को

भौङ्कने लगे। उन्होंने अपने साथियों को भी, जो बाँध दिये गये थे, खोल दिया। वे सब मिलकर जय जयकर करने लगे। सारा बातावरण गूँजता हुआ-सा लगा।

इस लड़ाई में मुझे अपने सैनिकों के साथ भाग लेने का मौका न मिला। जङ्गलियों की बहादुरी देखकर मैं चकित था। मुझे ऐसा लगा कि इनको यदि कुछ सिखा दिया गया तो इनकी सहायता से, कुण्डलिनी द्वीप को नरवाहन के दुष्ट प्रभाव से मुक्त किया जा सकता है।

"क्या जङ्गल की जलती आग को यों ही छोड़ दोगे? छोड़ दोगे तो आग धीमे धीमे सारी जगह फैल जायेगी। कुछ तो करना ही चाहिए।" मैंने जङ्गलियों के सरदार से कहा।

उसने जलते जङ्गल की और एक बार देखकर कहा-"उस आग को बुझाना, आदमी के बस की बात नहीं है। आग लगाना जरूर आसान है। मगर बुझाना नहीं। खैर, अब यह बताइये आपका यह राजा, हमारे जङ्गली प्रदेश को क्यों किसी को दे रहा है। अगर हम सब जङ्गली उसका मुकाबला करने लग जाये तो



वह क्या हमारे सर्वनाश के लिए तैयार हो जायेगा?" सरदार ने पूछा।

मैं इन प्रश्नों की ही बहुत देर से प्रतीक्षा कर रहा था। मैंने उसको नरवाहन की कुटिल राजनीति और उस राजनीति को सफल बनाने में मदद देनेवाले द्रोहियों के बारे में बताया। "अगर वह उनको जिन्होंने उसकी मदद की है, इस तरह जागीरें न दे, तो वे सब मिलकर उसको मार देंगे। इसलिये उसे इस तरह करना ही पड़ेगा। अगर तुम उसके चंगुल से बचना चाहते हो, तो तुम सब को

मिलकर उसका मुकाबला करना होगा। दूसरा और कोई रास्ता नहीं है। मेरी यही राय है।" मैंने कहा।

ये बातें सुन पाँच छ मिनट तक जङ्गलियों का सरदार कुछ सोचता खड़ा रहा। फिर उसने जङ्गलियों को सम्बोधित करके कहा-"तुम्हें यह बात सब जगह पहुँचानी होगी। कल ठीक दुपहर को भेड़िया गाँव में, जाति के सब बड़े मुखिये, अपने अपने साथियों को लेकर एकत्रित हो।" उसने यह आज्ञा बहुत ऊँचे स्वर में दी।

तुरत, भयङ्कर शब्द करते हुए, सशस्त्र जङ्गली युवक, जङ्गल में चारों ओर भागने लगे। मैं भी अपने साथियों को लेकर जङ्गलियों के सरदार के साथ साथ, भेड़िया गाँव की ओर चल पड़ा।

सबेरे होते होते, हम भेड़िया गाँव पहुँचे। जब आसपास इतने गाँव थे, तब सरदार ने यह गाँव ही क्यों चुना, मुझे, सहसा, गाँव को देखकर भलीभाँति मालूम हुआ।

यह गाँव दूसरे जङ्गली गाँव की तरह न था। गाँव के चारों और ऊँची मिट्टी की



चारदीवारी थी। कहीं कहीं छोटे बुरज भी थे। गाँव के बड़े बड़े पेड़ों पर मचान भी बने हुए थे। वहाँ से बाण छोड़े जा सकते थे। गाँव के बीच में एक बड़ा सागून का पेड़ था। उस पर चढ़कर, चार पाँच मील की दूरी पर क्या क्या हो रहा था, सब आसानी से देखा जा सकता था।

ज्यों ज्यों समय होता जाता था जाति के बड़े बूढ़े बुजुर्ग, त्यो त्यों अपने अनुयाथियों को लेकर वहाँ इकट्ठे होते जाते थे। इन लोगों में वृद्ध भी थे, और नवयुवक भी। पर सभी के पास हथियार थे। सभी के चेहरों पर भय, उत्कण्ठा, और आश्चर्य अङ्कित मालूम होते थे।

ठीक दुपहर को एकत्रित लोगों में तालियाँ बजने लगीं। यह सभा के प्रारम्भ की सूचना थी। एक बड़े बढ़ के पेड़ के नीचे सिंह और मृगचर्म बिछा दिये गये थे। जात के बड़े बुजुर्ग एक एक करके उन पर बैठने लगे। मेरे साथ आये हुए सरदार को पेड़ के पास एक उन्नत आसन दिया गया। मुझे और मेरे अनुचरों को, उसके पीछे कुछ नीचे बिठाया गया। उपस्थित लोगों में तरह तरह के फल,





मांस, मदिरा बाँटे गये। सबके खाने के बाद, वृद्ध सरदार ने, वहाँ सब के बुलाये जाने का कारण स्पष्ट शब्दों में बताया।

"परिस्थितियाँ एकदम बदल गयी है। कुण्डलिनी द्वीप में कई राजा आये, और कई गये, पर किसी ने भी हमारे प्रदेश में कोई दखल न दिया। हम इस वन सम्पदा के मरोसे सुख से जीते रहे। पर अब दशा बदल रही है। अब हमारे यहाँ भी गड़बड़ी दोने लगी। रात को जो भयङ्कर घटना हुई, आप में से कइयों ने देखा ही होगा।" वृद्ध ने अपना भाषण यों समाप्त किया। तब सभा में एकत्रित अन्य मुखियों ने अपने अपने विचार प्रकट किये। उनकी बातें सुनकर मुझे ऐसा लगा मानो नरवाहन ने वह सारा प्रदेश, अपने सहायकों में बाँट दिया हो।

"अब क्या करना होगा?" यह प्रश्न यहाँ उपस्थित मुखियों को सता रहा था। कुछ न कुछ करना होगा, पर क्या करना होगा, उनमें से कई न जान पाये थे। "यह जङ्गल हमारा है, इस पर हमारा अधिकार है।" कई भाषणों की यह टेक थी। यह सुनने के बाद वृद्ध सरदार ने सीधा प्रश्न पूछा-"अच्छा तो उन अधिकारों को कैसे सुरक्षित रखा जाय?"

यह प्रश्न सुनते ही उपस्थित लोग एक दूसरे का मुँह ताकने लये। थोड़ी देर खामोशी रही। फिर एक नौजवान ने उठकर कहा-"हमें जोर-जबरदस्ती से झुकाना चाहते हैं। इसलिये हमें भी, अपनी शक्ति से भरसक उनका मुकाबला करना होगा।"

"हाँ हाँ" स्वीकृति रूप में, सभी ओर से "हाँ हाँ" का शब्द प्रतिध्वनित होने लगा। वृद्ध सरदार शायद इसी क्षण की



पतीक्षा कर रहा था। उसने सिर हिलाते हुए कहा-"तब अच्छा होगा कि जात के मुखिये अपने अनुचरों को तुरन्त इकट्ठा कर लें। हमें दुश्मन को यह मौका न देना चाहिये कि वह एक एक करके हमारे गाँव का नाश करे। हमें भी शत्रु का मुकाबला करना चाहिये। जीत हो या हार, पर यह बात तय कर लेनी होगी।"

उपस्थित मुखियों को उसकी बात जँची। उन्होंने उसकी बात को स्वीकृत करते हुए तालियाँ बजाई। तब वृद्ध ने कहा-"आप सब की अनुमति से मैं पहले एक काम करना चाहता हूँ। मैं इस बीच में, नरवाहन के पास, जिसने अब कुण्डलिनी द्वीप पर कब्जा कर किया है, ख़बर भिजवा दूँगा कि उसका इस इलाके में सैनिकों का भेजना अच्छा नहीं है। देखें, वह क्या कहता है।"

इस विषय में भी स्वीकृति की सूचना देते हुए, सब ने सिर हिलाये। इस तरह वह सभा समाप्त हुई। यह निर्णय हुआ कि अगले दिन शाम तक, जाति के बड़े बुजुर्ग, अपने अपने साथियों को लेकर भेड़िया गाँव में इकट्ठे हों। यह भी निश्चय किया गया कि स्त्री, वृद्ध, बच्चों को जङ्गल के अन्दर सुरक्षित जगह पर पहुँचा दिया जाय।

सब के चले जाने पर वृद्ध ने मुझे लाकर पूछा-"आपकी क्या राय है? आपने इन बुजुगों को तो देख ही लिया है। क्या वे सैनिकों का मुकाबला कर सकेंगे?"

"यह अभी नहीं कहा जा सकता। नरवाहन के सैनिक खूब सीखे-सधे हैं। अलावा इसके, उनके पास घोड़े भी हैं। बिजली की तरह हमला करके वे गायब हो सकते हैं। आप लोगों के पास सिवाय पदातियों

के और कोई नहीं है। युद्ध में सिर्फ शक्ति, साहस ही काफी नहीं है। क्या आप अश्व-सेना तैयार कर सकेंगे?" मैंने पूछा।

बुद्ध ने कहा-"यह फिलहाल तो सम्भव नहीं है। अभी अभी ही हमारे नौजवान जङ्गली घोड़ों को पकड़कर उन्हें सिखाकर, बिना जीन, लगाम के, उन पर सवारी कर रहे है। जीन बनाने के लिए हमारे पास कारीगर नहीं है। पर अश्व-सेना तैयार करनी ही होगी।"

"जरूर! तैयार कीजिये। उसकी बहुत जरूरत होगी।" मैंने सलाह दी। तब वृद्ध ने एक चमड़े पर तेज चाकू से कुछ लिखकर एक युवक को बुलाकर कहा-"इसे नरवाहन राजा के पास पहुँचाओ। तू निर्भय हो, जङ्गल से मैदान की ओर जा। जिस किसी सैनिक को यह तू दिखायेगा, वह मुझे राजा के पास ले जायेगा। पर तुझे निश्शस्त्र रहना होगा।"

उस सन्देश का क्या फल होगा, यह जानने के लिए मैं उत्सुक हो उठा। उसने क्या लिखा था, मैने न पूछा। पर मैं इतना ताड़ गया कि वृद्ध को भी बहुत विश्वास था कि इससे कोई लाभ होगा।

उस रात को, हमने भेड़िया गाँव में ही आराम किया। रात भर हम जलते जङ्गल देखते रहे और लोगों के चीत्कार भी हम सुनते रहे। हम बहुत सवेरे उठे, पर तब तक वृद्ध और कई बुजुर्ग सागून के पेड़ के नीचे मौजूद थे। मेरे वहाँ पहुँचते ही मचान पर से एक व्यक्ति चिल्लाया-"देखो, हमारा आदमी आ रहा है। पर यह क्या? यह गधे पर बैठा हुआ है।" उसने आश्चर्य प्रकट किया।

(अभी और है)





ब्रह्मदत्त जब काशी का परिपालन कर रहा था, तो बोधिसत्व इन्द्रप्रस्थ नगर में, धनञ्जय नाम के कुरु राजा के रूप में पैदा हुए। उनके राज्य में, न अतिवृष्टि थी, न अनावृष्टि ही। प्रजा सर्व सम्पन्न सुखी थी। धर्म के आचरण में, दान-धर्म में, धनञ्जय का मुकाबला कोई न कर सकता था। यह ख्याति सारे जम्बू द्वीप में फैली हुई थी।

उन्हीं दिनों, कलिङ्ग देश का राजा कालिङ्ग था। उसकी राजधानी दन्तपुर थी। वहाँ अनावृष्टि के कारण एक साल अकाल पड़ा। प्रजा भूख के मारे तड़पने लगी। कई बच्चे माँ की गोदों में ही मर गये। सब के सब दाने दाने को मोहताज हो गये। जनता में हाहाकार मचा।

यह बिषम परिस्थिति देख, कालिङ्ग ने अपने मन्त्रियों से विचार-विनिमय किया।

"इस वर्ष हमारे देश इतने भयङ्कर अकाल के आने का क्या कारण है? अकाल का निवारण करने के लिए हमें क्या करना चाहिये?" राजा ने पूछा।

"महाराज! जब धर्म का पालन नहीं होता, तब ऐसी विपत्ति देश पर आती है।"

"इन्द्रप्रस्थ के राजा धनञ्जय अपने धर्म का अच्छी तरह पालन कर रहे हैं। इसलिये उस देश में नियमितरूप से महीने में तीन बार वर्षा होती है। कभी दुर्भिक्ष नहीं होता। कभी किसी चीज की तङ्गी नहीं पड़ती।" मन्त्रियों ने निवेदन किया।

"यदि यही बात है तो तुम तुरन्त इन्द्रप्रस्थ जाओ। धनञ्जय राजा के दर्शन करो और उनसे सुवर्ण पत्रों पर धर्म के मूल-मूत सिद्धान्तों को लिखवा लो। हम भी उनका



आचरण करेंगे, ताकि देश में फिर कभी अनादृष्टि न हो। "कलिङ्ग राजा ने कहा।

राजा के कथनानुसार, कलिङ्ग देश के मन्त्री, कुछ सुवर्ण पत्रों को लेकर इन्द्रपत्र पहुँचे। वहाँ राजा धनञ्जय का दर्शन प्राप्त कर उन्होंने कहा-

"महाराज! हम कलिङ्ग देश से आ रहे हैं। हमारे देश की प्रजा भयङ्कर अकाल से त्रस्त है। प्रजा में हाहाकार मचा हुआ है। क्योंकि आप स्वयं धर्म का पालन करते हैं, इसलिये आपकी प्रजा कष्टों से अपरिचित है। हमारे राजा को किन धार्मिक सिद्धान्तों का पालन करना चाहिये, यदि आप इन सुवर्ण पत्रों पर लिख दें, तो हम उन्हें लेकर वापिस ले जायेंगे और हमारे राजा को दिखायेंगे। हमारे राजा भी उनका पालन करेंगे, और प्रजा को इन कष्टों से मुक्त करेंगे।"

यह कहते हुए कलिङ्ग के मस्त्रियों ने सुवर्ण पत्र राजा धनञ्जय के सामने रख दिये। धनञ्जय ने उन्हें यथोचित आसन पर बिठाकर इस प्रकार कहा-"महामन्त्रिगण ! मुझे क्षमा कीजिये। मैं इन पत्रों पर धर्म के सिद्धान्तों के लिखने के योग्य नहीं हूँ।"

एक समय था, जब मैने स्वयं अधर्म किया था। हमारे देश में हर तीसरे वर्ष, कार्तिकोत्सव मनाया जाता है। तब राजा को, एक तालाब के किनारे यज्ञ कर, चारों दिशाओं में चार बाण छोड़ने चाहिये। एक बार मेरे छोड़े हुए चारों चाणों में से तीन तो मिल गये, परन्तु चौथा तालाब में गिर गया। अब वह तालाब में गिरा होगा तो उसकी चोट से मछली, मेण्ढक बगैरह मर गये होंगे। इस तरह में धर्म-मार्ग से विचलित हुआ। अतः यदि हमारे राज्य में अकाल नहीं पड़ते हैं, तो इसका

कारण कोई और होगा। आप पता करके देखिये।"

यह सुन मन्त्री आश्चर्य चकित हुए। वे राज-माता मायादेवी के पास गये। उन्होंने उनको सब कुछ कह सुनाया। "कम से कम आप हमारे लिये धर्म के सिद्धान्त लिख दीजिये।" मन्त्रियों ने कहा।

"मैं भी धर्म-मार्ग से विचलित हो चुकी हूँ। एक बार मेरे ज्येष्ठ पुत्र ने मुझे सोने का हार भेंट में दिया। यह सोच कि मेरी बड़ी बहू स्वयं धनवती है, मैंने अपनी छोटी बहू को वह हार दे दिया। पर देने के बाद तुरन्त मुझे भान हुआ कि मैं दोनों में भेद कर रही हूँ। में गलती कर रही हूँ। इसलिये में किसी दूसरे के लिए धर्म के सिद्धान्त नहीं लिख सकती। मैं लाचार हूँ। किसी और से पूछिये।" राज-माता ने कहा।

कलिङ्ग मन्त्री राज-भ्राता नन्द के पास गए। उन्होंने अपना आशय उन्हें बताया। उसने कहा कि वह भी एक बार धर्म से बिचलित हो चुका है।



"मैं प्रति रात्रि रथ पर सवार हो कर अन्तः पुर में जाता हूँ। कभी कभी वहाँ रात भर ठहर भी जाता हूँ। यदि मैं रथ में कोड़ा छोड़ता, तो इसका मतलब था कि मैं वापिस आ जाऊँगा। अगर मैं कोड़ा साथ ले जाता, तो सारथी रथ ले जाकर, अगले दिन सवेरे लाता। एक बार रख में ही कोड़ा छोड़कर, अन्तःपुर में गया। मैं बापिस आना चाहता

था। परन्तु इस बीच में वर्षा शुरू हो गई। मेरे भाई राजा ने मुझे जाने नहीं दिया। उस रात वहीं ठहर गया। वर्षा में भीगता मेरा सारथी बाहर ही रह गया। उसको इस प्रकार कष्ट देकर मैने धर्म का पालन नहीं किया है।

मुझे माफ़ कीजिए ।"- राज भ्राता ने कहा।

यह सोच कि कम से कम कुरु राजा के मन्त्री उनकी इच्छा पूरी कर सकेगा, कलिङ्ग के मन्त्री उनके पास गये। परन्तु उन्होंने भी मन्त्रियों को निराश कर दिया। उन्होंने यों कहा-

"मैं एक दिन किसानों के प्रान्तों में भूमि की पैमाइश के लिए गया। पैमाइश के अनुसार चिन्ह के लिए जहाँ डण्डा गाड़ना चाहिये था, वहाँ एक बिल था। मुझे सन्देह हुआ कि उस बिल में कोई प्राणी होगा। परन्तु अगर डण्डे को इस तरफ गाड़ता हूँ तो किसान को नष्ट होता है; अगर उस तरफ गाड़ता हूँ तो राजा को हानि होती है। इसलिए मैंने आज्ञा दी कि बिल में ही डण्डा गाड़ा जाना चाहिये। उसी समय एक केकड़ा बाहर रेङ्गता हुआ आया, और डण्डे की चोट से मर गया। इसलिये मैंने भी धर्म का उल्लंघन किया है। मैं किसी से किसी विषय में कोई अधिक नहीं हूँ।" कुरु राजा के मन्त्री ने कहा ।

कलिङ्ग देश के मन्त्रियों को एक बात सूझी। उन्होंने जो कुछ सुना था, उसी को सुवर्ण पत्रों पर लिखकर अपने राजा के पास ले जाने की ठानी। आखिर कलिङ्ग के मन्त्रियों ने वही किया। धर्म के प्रति श्रद्धा रखना ही उत्तम धर्म है, कलिङ्ग ने उनके अनुभव से जाना। वह भी आत्म विवेचन करता, अपने देश का परिपालन करने लगा। तुरन्त वर्षा हुई, अकाल समाप्त हुआ। लोगों में उत्साह आ गया । कलिङ्ग देश की प्रजा तब से सुख से रहने लगी।





भूत कहाँ है?

कालिन्दी नदी के किनारे किसी गाँव में प्रज्ञावन्त नाम का एक ब्राह्मण रहा करता था। नाम तो बड़ा था, पर वह किसी काम का न था। उसकी एक सुन्दर सुगुणवती लड़की से शादी निश्चित की गई। उसका नाम सुलोचना था। जितना ब्राह्मण बदसूरत था, उतनी ही वह खूबसूरत थी। सुलोचना के माँ-बाप पज्ञावन्त को जानते थे। उन्होंने सोचा, अगर उसके साथ उनकी लड़की की शादी हुई, तो लड़की उसके गाँव में ही रहेगी।

विवाह का मुहूर्त निश्चय किया गया। सुलोचना को दुल्हन बनाया गया। वह प्रज्ञावन्त से कतई शादी न करना चाहती थी, पर वहाँ उसकी कोई सुननेवाला न था। इसलिये उसने आत्म हत्या करने की ठानी। शादी के दिन सवेरे, अन्धेरे में वह बगल में कलश रख, कालिन्दी नदी की ओर गई। कलश किनारे पर रख, साड़ी कमर में बाँध, वह नदी में उतरने को ही थी कि किसी ने पीछे से उसको पकड़ लिया।

उसको आत्महत्या करने से रोकनेवाले नौजवान का नाम वित्तवर्मा था। वह कुम्भकोणम में व्यापार करता था। वह वहीं बस गया था। वह विवाह करने के लिये इधर अपने गाँव में आया था। उसने बहुत-सी लड़कियाँ देखीं, पर उसे कोई भी पसन्द न आई। इसलिये वह घोड़े पर सवार हो, दूसरे गाँव में लड़कियों को देखने जा रहा था कि उसको सुलोचना दिखी थी। उसको सन्देह हुआ। इसलिये झट उसने उसको आत्महत्या करने से रोका।

"तुम तो दुल्हन बनी हुई हो। फिर यह क्या काम है?" वित्तवर्मा ने सुलोचना से

श्री सरस्वती विश्वनाथन

पूछा। उसने बिना कुछ छुपाये सब उसे बता दिया। "उस आदमी से शादी करने से अच्छा मरना है। आपने मुझे मरने भी न दिया।" कहते कहते वह रोने लगी।

"अच्छा ही हुआ। क्या तुम मेरे साथ आओगी? मैं एक लड़की के लिये ढूँढ़ रहा हूँ। पर मुझे कोई सुन्दर लड़की न दिखाई दी। अगर तुम्हारे भाई-बन्धु को दूर देश में तुम्हें भेजने में आपत्ति न हो, तो मैं तुमसे विवाह करना चाहता हूँ।" वित्तवर्मा ने कहा।

जब मैंने आत्महत्या करने की सोची थी, तभी मैंने सब छोड़ दिया था। उन्होंने मेरा कौन सा भला किया है? इसलिये मुझे पत्नी बनाकर आप ही मेरा भरण-पोषण कीजिये।" सुलोचना ने कहा।

वित्तवर्मा ने उसको घोड़े पर चढ़ाया और सूरज निकलने से पहिले तीन-चार गाँव दूर चला गया, फिर कुम्भकोणम अपने घर भी पहुँच गया।

उन दोनों के चले जाने के बाद, गाँव वालों ने नदी किनारे कलश देखा। उन्होंने जाकर कहा कि कोई नदी में



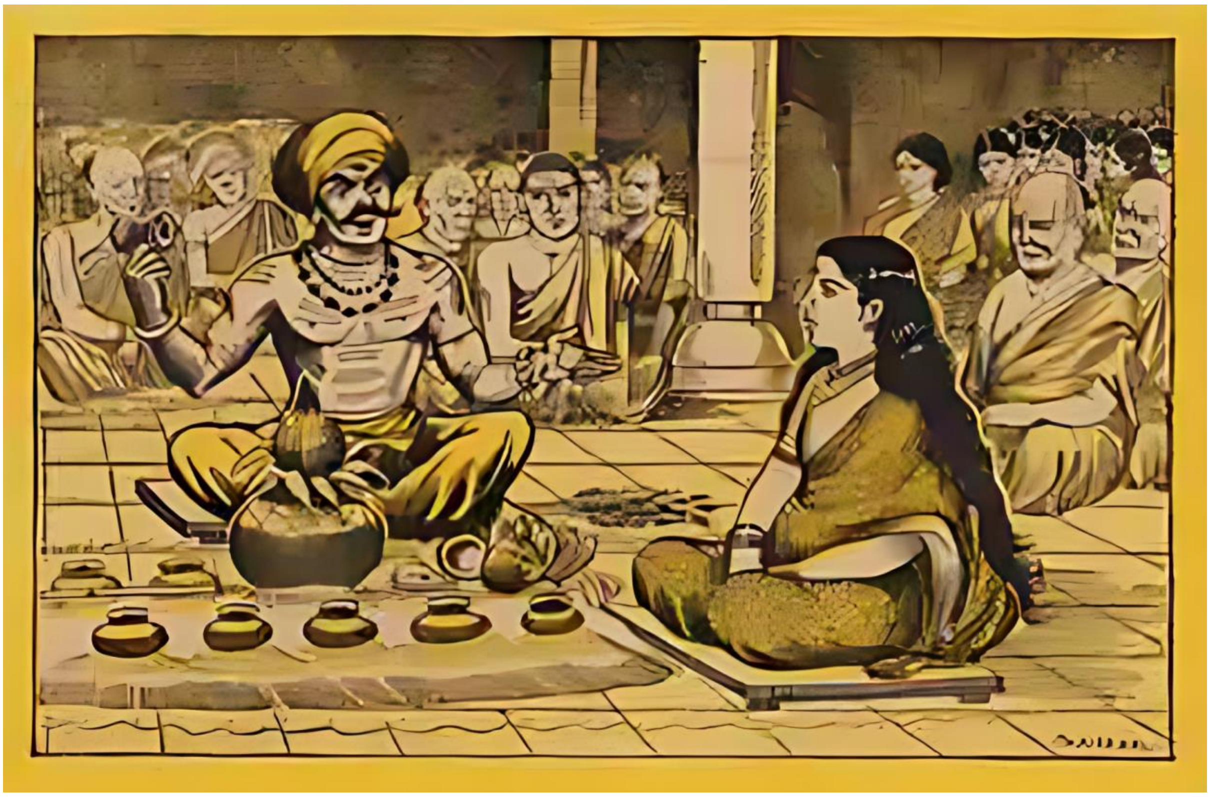
डूब गया है। कलश की पहचान से और सुलोचना को वहाँ न पा, यह बात पक्की हो गई कि सुलोचना ही नदी में डूब गई थी। शादी के लिये आये बारातियों ने, जिसके मन में जो आया, सुलोचना के बारे में कहा।

चाहे कोई भी भोन्दू हो, अगर वह शादी करना चाहे, तो उसे लड़की मिल ही जाती है। थोड़े दिनों बाद प्रज्ञावन्त की राधा नाम की एक लड़की से शादी हो गई। वह कालक्रम से गर्भवती हुई। गर्भवतियों का शुरू शुरू में स्वास्थ्य प्रायः अच्छा नहीं रहता। राधा को जल्दी ही उलटियाँ होने लगीं। वह घबराने लगी।

फिर आसपास की औरतों ने आकर कहा-"अरे पगली। तू इस हालत में उस घाट पर क्यों गई थी? क्या तुझे नहीं मालूम कि सुलोचना भूत बनकर वहाँ धूम-फिर रही है। शादी के समय वह जबर्दस्ती मर गई थी। क्योंकि तूने उसी से ही शादी की है, जिससे कि उसकी होनी थी, वह तङ्ग किये बिना नहीं छोड़ेगी।" उन्होंने राधा को इस तरह इधर उधर की बातें बताई।

कहीं राधा और उसके गर्भ की सन्तान का बुरा न हो, प्रज्ञावन्त ने नजर उतरबाई, मन्त्र पढ़वाये; भोज करवाये। हर कोई कहता कि राधा को सुलोचना का मूत ही सता रहा है। प्रज्ञावन्त भी लोगों की बातों में यकीन करने लगा। उसने आसपास के ओझाओं को बुलाकर भूतों को झड़वाया, मन्त्र पढ़वाये और पत्नी के गले में एक ताबीज भी वैधवाई। एक के बाद एक ओझा ने भूत को भगाया। धीरे धीरे राधा की सेहत भी सुधरने लगी।

थोड़े दिनों बाद, राधा ने एक बच्चे को जन्म दिया। पर वह बचा मरा हुआ निकला। सब ने यही कहा कि वह भूत



की करतूत है। "चाहे कितनों ही ने मृत भगाये हो, पर क्या फायदा? भूत का ठीक तरह उपशमन नहीं किया गया। मामूली ओझा भूतों को नहीं भगा सकते। तुझे तीर्थ यात्रा करनी चाहिये।" कई ने प्रज्ञावन्त को सलाह दी। "रामेश्वर जाना अच्छा है। इससे पहले जब भी किसी को भूत तङ्ग करता तो वह रामेश्वर जाया करता और भूत छूट जाता।" एक ने बताया।

प्रज्ञावन्त ने अपनी पत्नी के साथ रामेश्वर जाने का निश्चय किया। अच्छा समय देखकर दोनों निकल पड़े। बहुत दिनों की यात्रा के बाद ये कुम्भकोणम् पहुँचे और वहाँ एक सराय में ठहरे। उस दिन रात को कोई चोर उनका समान असबाब चोरी करके ले गये। इस चोरी के कारण प्रज्ञावन्त और राधा के पास, सिवाय उन कपड़ों के, जो उन्होंने पहन रखे थे, कुछ नहीं था। वे न आगे जा साकते थे, न पीछे ही। उनकी हालत देखकर वहाँ के लोगों ने कहा-"जो गुज़र गया है, उस पर न सोचिए । इस शहर में कर्ण का सा



दानी व्यापारी है, जो आपकी ही तरफ का है। अगर आपने जाकर उनको अपनी कहानी सुनाई, तो आपकी यात्रा के लिए वे सब प्रबन्ध कर देंगे।"

प्रज्ञावन्त ने व्यापारी का घर पूछताछ करके मालूम कर लिया। पत्नी को साथ लेकर वह उसके पास गया। जब प्रज्ञावन्त, व्यापारी से बात कर रहा था, तो उसकी पत्नी, व्यापारी की पत्नी के पास जाकर बातें करने लगी। उसने उसे बताया कि कैसे सुलोचना के भूत ने पकड़ रखा था, और उस भूत को छुड़वाने के लिए वे कैसे रामेश्वर जा रहे थे, और कैसे सराय में उसके समान की चोरी हो गई थी।

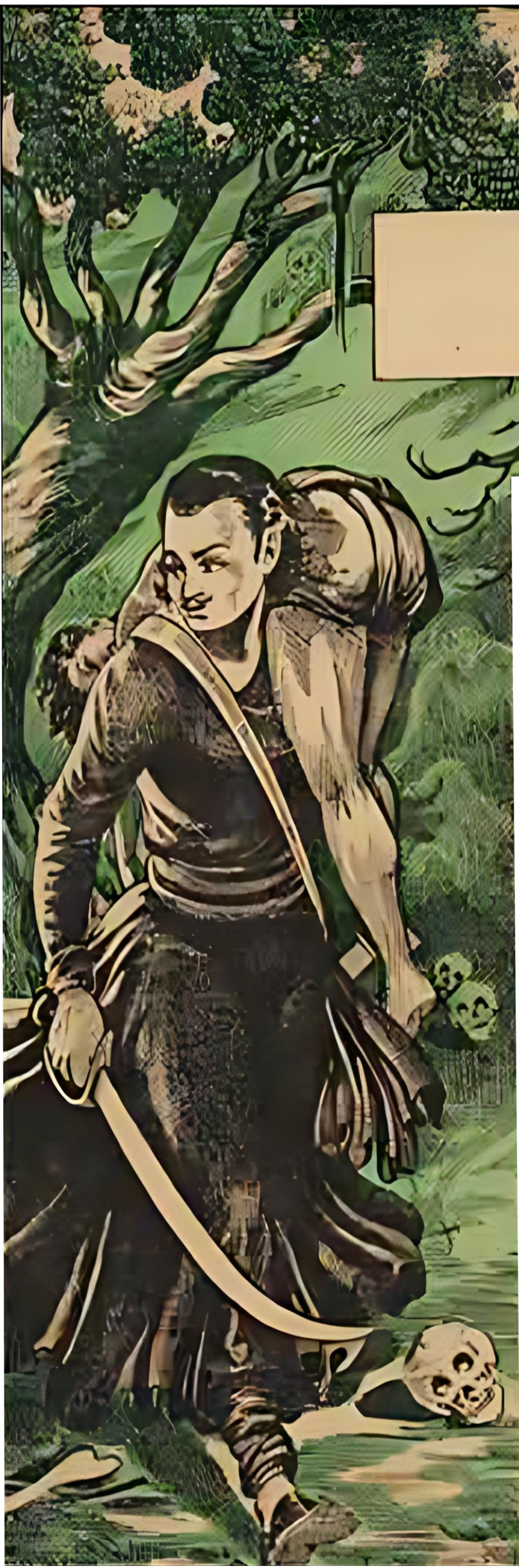
यह सुन उस व्यापारी की पत्नी ने झट अपने गहने उतार कर, राधा को दे दिये। उसने एक मामूली साड़ी पहनकर, नौकर को भेजकर प्रज्ञावन्त को भी अन्दर बुलवाया।

प्रज्ञाबन्त आ तो गया, पर उसने व्यापारी की पत्नी के मुँह की ओर देखा तक नहीं।

"क्यों भाई! क्या तुमने कभी पहले मुझे देखा था?" व्यापारी की पत्नी ने पूछा। प्रज्ञावन्त ने जब उसको देखा, तो मुख की बात मुख में ही रह गई। काटो तो खून नहीं। पत्थर की तरह खड़ा रहा। सुलोचना ने राधा से कहा-"देखा! तुमने यह सोचकर कि मैं भूत बनकर, तुम्हें तङ्ग कर रही हूँ, इसलिये ही तुम इतनी दौड़धूप कर रहे हो। कम से कम अब जान लो कि भूत भ्रम है, और घर जाकर आराम से रहो।" कहते हुए सुलोचना ने भी अपनी सारी कहानी सुनाई।

प्रज्ञावन्त और राधा, उनके घर दो दिन रहे, उनसे ही वापिसी यात्रा के लिये आवश्यक खर्च लेकर, वे घर चले गये।





प्रत्युपकार

विक्रमार्क हार न माननेवाला था। वह फिर पेड़ के पास गया। शव को उतारकर कन्धे पर डाल शमशान की ओर चला। तब शव में स्थित बेताल ने कहा-"राजा! किसी दूसरे के लिए तुम्हें कष्ट उठाता देख मुझे चण्डसिंह की बात बाद आ रही है। मैं उसकी कहानी सुनाता हूँ, ताकि तुम रास्ते में थक न जाओ। सुनो। बेताल ने यह कहानी सुनाई:

पूर्वी समुद्र के किनारे पर, ताम्रलिप्ति नाम का एक नगर था। उस नगर के राजा का नाम चण्डसिंह था। वह सद्गुणी था। वह अपने आश्रितों की इतनी अच्छी तरह देख-भाल करता कि कई देशों से राज कुमार, उनकी नौकरी करने आये हुए थे। इन राज कुमारों में, दक्षिण देश का भी



एक राज कुमार था, जिसका नाम सत्यशील था। सत्यशील के भाग्य ने साथ न दिया। उसे राजगद्दी छोड़नी पड़ी। वह फटेहाल, थका-माँदा, राजा के महल के पास पहुँचा। राजा ने उसे मामूली आदमी समझकर नौकरी में रख लिया।

सत्यशील ने समझा कि शायद नौकरी करना भी उसके भाग्य में लिखा है। वह दस साल तक बिना कोई वेतन माँगे, घोड़ों की देख-रेख करता रहा।

एक दिन राजा, नौकर-चाकरों के साथ शिकार खेलने गया। राजा के आगे, घोड़े पर सवार हो जाने का काम, सत्यशील को सौंपा गया। शिकार खेलते खेलते, राजा नौकर-चाकरों के पीछे छोड़, जङ्गल में बहुत दूर चला गया। तब भी सत्यशील अपने घोड़े पर उनके आगे भागता जाता था। जङ्गल निर्जन था। राजा जान गया कि वह रास्ता भटककर आ गया था। उसने सत्यशील से पूछा-"क्या तुम जानते हो, हम किस रास्ते से आये थे?"

"हाँ, महाराज! मैं जानता हूँ। अब दुपहर हो गई है। आप थोड़ी देर पेड़ के नीचे आराम कीजिये। बाद में आकर मैं रास्ता दिखा दूँगा।" सत्यशील ने कहा।

"मुझे पहले नहाना है। प्यास लग रही है। भूख भी जबरदस्त है। क्या किया जाय?" राजा ने पूछा।

"थोड़ा सब्र रखिये। देखकर आता हूँ, कहीं आसपास कोई तालाब वगैरह तो नहीं है।" कहता कहता सत्यशील एक ऊँचे पेड़ पर चढ़कर इधर उधर, चारों ओर देखने लगा। थोड़ी दूर पर उसे एक छोटी-सी नदी दिखाई दी। वह पेड़ से उतरा। राजा को नदी में स्नान कराया। फिर अङ्गोछे में से दो आमले राजा को देते

हुए उसने कहा-"महाराज! इनसे आप अपनी भूख मिटा लीजिये।"

राजा को अचम्भा हुआ। "यह फल यहाँ कहाँ से आये? क्या इन्हें खाने से भूख मिट सकेगी?" उसने पूछा।

"जी हुजूर! आपकी नौकरी में जब से हूँ, यानी दस वर्ष से, मैं इन्हें खाकर ही अपनी भूख मिटाता आया हूँ। मैंने और किसी चीज को न खाया। मैं अपने पास इन्हें हमेशा रखता हूँ।" सत्यशील ने कहा।

जब राजा ने सत्यशील की कहानी सुनी तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। राजा को यह सोच दुःख भी हुआ कि एक आदमी बिना किसी तनख्वाह के दस साल से काम कर रहा था, और उसने अपने खाने-पीने की भी परवाह न की।

शिकार से वापिस लौटकर भरे दरबार मैं राजा ने सत्यशील की कहानी सुनाई। उसको बहुत सा धन और बड़ी जागीर देकर उसको अपने निजी कर्मचारी के रूप में नियुक्त किया। इतना करने पर भी राजा को सन्तोष न हुआ कि उसने सत्यशील का ऋण चुका दिया है।



थोड़ा समय बीता। राजा ने विवाह करने का निश्चय किया। मन्त्रियों ने सलाह दी कि लङ्का द्वीप की राजकुमारी से शादी करना सब प्रकार से लाभपद था। शादी की बातचीत करने के लिये राजा ने सत्यशील को जहाज़ में लङ्का भेजा। राज पुरोहित के साथ, जब सत्यशील जहाज पर जा रहा था, तो विचित्र घटना घटी।

जराज के रास्ते में, समुद्र की तह से एक सोने का झण्डा आकाश को चूमता-सा ऊपर उठा। उसी समय समुद्र में भयङ्कर तूफान उठने लगा। लोगों में हाहाकार मचा



समुद्र उसकी यात्रा में इस तरह बाधा डालता देख सत्यशील को बहुत गुस्सा आया। वह तलवार लेकर समुद्र में कूद पड़ा। पर उसे समुद्र न दिखाई दिया। परन्तु उसे वहाँ सुन्दर सुन्दर उद्यान दिखाई दिये, जिनके बीच एक पार्वती का सुन्दर मन्दिर भी बना हुआ था।

सत्यशील मन्दिर में घुसकर देवी को नमस्कार कर बैठा ही था कि मन्दिर में उस समय एक बहुत ही सुन्दर, अद्‌भुत स्त्री आई। उसके साथ हजार सहेलियाँ भी हाथ में पूजा की सामग्री लिये हुए आई।

उस स्त्री ने सत्यशील की ओर देखा तक नहीं। वह देवी की पूजा कर, अपनी सहेलियों के साथ वापिस जाने लगी। पर सत्यशील उस पर दीवाना-सा हो गया था। वह भी उनके पीछे पीछे चलने लगा।

वे सब स्त्रियाँ एक नगर में पहुँची। एक राज महल में जाकर वे सब एक जगह बैठ गई। सत्यशील, जिस पर मोहित हुआ था, उसको लाख आँखों से देखने लगा। उसको इस तरह घूरता देख उस स्त्री ने अपनी एक सहेली को इशारा किया। तुरन्त एक सहेली ने सत्यशील के पास आकर कहा-"स्वामी! आप कौन हैं? आप हमारे अतिथि के रूप में आये हैं। भोजन का समय हो गया है। आप पास की झील में नहा-धो आइये।" उसकी उसने आवभगत की।

सत्यशील बड़ा खुश हुआ। झील में नहाने के लिए उतरा। दूसरे क्षण वह ताम्रलिप्ति नगर के उद्यान की बावड़ी में, ऊपर तैर आया। राज सैनिक उसको पहचानकर उसे राजा के पास ले गये। सत्यशील का अनुभव सुनकर राजा को इस बात की फिक्र न थी कि उसका जहाज

डूब गया है, या उसकी शादी की बातचीत बीच में खतम हो गई है। वह यही सोच रहा था कि उसको सत्यशील का ऋण चुकाने का मौका मिला है। वह इसी में सन्तुष्ट हो रहा था। उसने सत्यशील से कहा-"तुम कुछ फिक्र न करो। यह मेरे जिम्मे रहे कि तुम्हारी उस लड़की से शादी करवा दूँ, जिस पर तुम दिल दिये हुए हो। हम तुरन्त उसी समुद्र-मार्ग पर जायेंगे।"

इस बार भी जहाज के रास्ते को रोकता हुआ एक सोने के झण्डे का मस्तूल समुद्र से निकला। उसके देखते ही सत्यशील, और उसके पीछे राजा समुद्र में कूद पड़ा। थोड़ी देर में, वे पार्बती के मन्दिर के पास पहुँचे। वे देवी को नमस्कार कर, बाहर आ ही रहे थे कि पहले की तरह वह स्त्री अपनी सहेलियों के साथ, मन्दिर में पूजा करने आई। वह राजा की ओर एक बार देखकर मन्दिर में चली गई।

राजा ने उसकी प्रतीक्षा न की। वह सत्यशील को लेकर, आसपास के उद्यान में भ्रमण करने लगा। वह स्त्री पूजा करके बाहर आई और राजा के लिए इधर उधर देखने लगी। जब



उसने राजा को देखा, तो एक सहेली को बुलाकर कहा-"यहाँ जी थोड़ी देर पहले महाराजा दिखाई दिया था, उसे ढूँढ़कर लाओ और हमारा आतिथ्य स्वीकार कराओ।"

बह सहेली बाग-बगीचों में घूमती महाराजा के पास पहुँची। "महाप्रभु! हमारी मालकिन ने आपको न्योता दिया है। आप स्वीकार करेंगे?" उसने पूछा।

"बुलाना ही काफी है। हमें और कुछ नहीं चाहिये।" राजा ने कहा।

सहेली ने यह बात उस स्त्री से कही। वह स्वयं भागी भागी, उनको बुलाने आई।

"आपने मेरे मित्र का सस्कार किया। उसके बारे में मैं जानता हूँ। बैसा आतिथ्य मैं नहीं चाहता हूँ।" राजा ने कहा।

"आप बड़े हैं। आपके साथ हम ऐसा क्यों करेंगी?" उस स्त्री ने कहा।

राजा, सत्यशील को साथ लेकर उस स्त्री के साथ गया। उसने उनका खूब आदर-सत्कार किया। "स्वामी! मैं कालनेमी नाम के दैत्य की पुत्री हूँ। विश्वकर्मा ने मेरे पिता के लिए यह बड़ा नगर बनाया है। इस नगर में न कोई बूढ़ा होता है, मरता ही है। मेरा पिता इस नगर को छोड़कर गया था, इसलिये ही विष्णु द्वारा मारा गया। अब मैं ही इस नगर का परिपालन कर रही हूँ। आप जैसे बड़ों का पधारना, इस नगर में पहली बार हो रहा है। आप जो कुछ कहेंगे, वही करने के लिए तैयार हूँ।" उस स्त्री ने कहा।

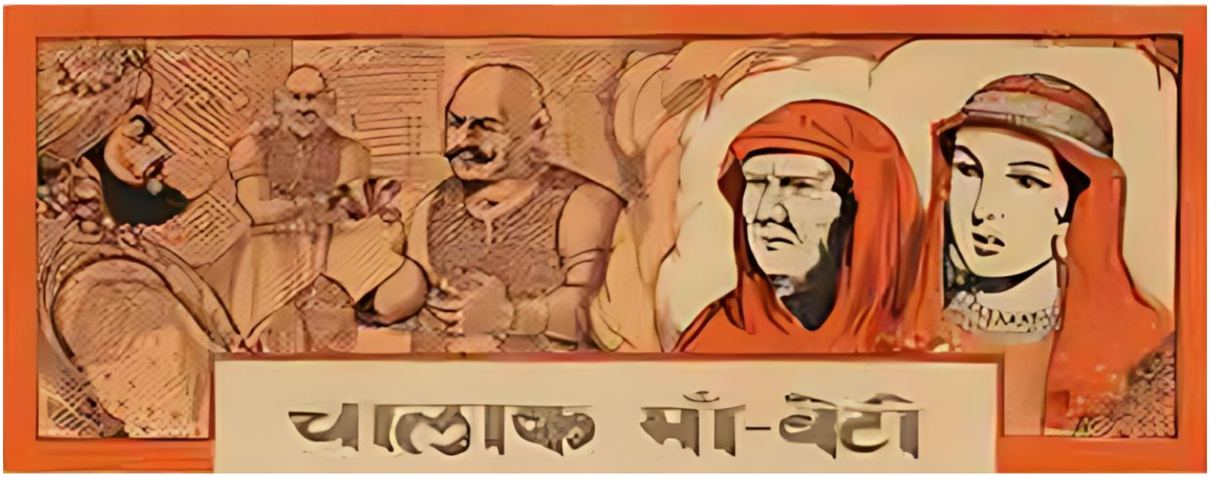
"ऐसी बात है, तो मेरे मित्र से अभी विवाह कीजिए।" राजा ने कहा। वह तुरन्त मान गई। उन दोनों का विवाह कर राजा ने सत्यशील से कहा-"मैंने तुमसे कभी दो आमले लेकर खाये थे। उनमें से एक आमलो का कर्ज मैंने नहीं चुकाया है।" यह कह, वह पास की झील में कूदा, और दूसरे क्षण अपने नगर में तैर आया।

यह कथा सुना बेताल ने पूछा-"राजा! चण्डसिंह और सत्यशील, दोनों में किसका साहस अधिक है?"

"सत्यशील का साहस ही अधिक है। वह यह बिना जाने ही कि समुद्र में क्या है, समुद्र में कूद पड़ा था। सब कुछ जान-बूझकर ही राजा समुद्र में कूदा था।" विक्रमार्क ने जवाब दिया।

राजा का मौन भङ्ग हो जाने पर, बेताल शव के साथ अदृश्य हो, पेड़ पर चढ़ बैठा।





[४]

अहमद के भाग्य अच्छे न थे। वह थोड़ी दूर ही गया था कि उसको हसन सामने से आता हुआ मिला। उसने यों ही पूछा-"क्यों अहमद? इस सरदी में यह क्या पोशाक पहन रखी है? इस तरह घूमना सेहत के लिये अच्छा नहीं है।"

"भाग्य को कोई नहीं धोखा दे सकता हसन। एक लड़की मेरी यह हालत कर गई है। क्या तुम उसका कुछ पता-ठिकाना जानते हो?" अहमद ने धीमे से पूछा।

"मैं उसको जानता हूँ, उसकी माँ को भी जानता हूँ। क्यों जाकर उनको पकड़ लाऊँ?" हसन ने पूछा।

"वह कैसे?" अहमद ने पूछा।

"इस में क्या रखा है? खलीफा के पास जाकर कहो कि यह तुम्हारे बस की बात नहीं है और यह काम मुझे सौंप दिया जाय।" हसन ने सलाह दी।

अहमद ने वही किया। खलीफा ने हसन को बुलाकर पूछा-"क्या तुम बुढ़िया को पकड़ सकोगे?"

"मैं उस बुढ़िया को जानता हूँ। मैं नहीं कह सकता कि धन के लालच से उसने से चोरियों की है। शायद उसने अपनी चालाकी आपको दिखाने के लिए यह सब किया है। अगर आप यह मान जायें कि अगर वह चोरी का माल वापिस कर देगी, तो आप उसे सजा न देंगे, तो उसको में आपके सामने हाजिर कर सकता हूँ।" हसन ने खलीफा से कहा।

कुमारी रज़िया रेहाना

खलीफा यह मान गया। हसन सीधे दिलैला के घर गया। किवाड़ खटखटाने पर जीनाव ने दरवाजा खोला। "अपनी माँ को बुलाओ। खलीफा उसे बुला रहे है। उन्होंने सजा न देने का वचन दिया है। चुराया गया सारा माल घोड़ों पर लदवाओ।" हसन ने कहा।

दिलैला ऊपरली मञ्जिल से उतरकर आई। हसन ने सारी बातें उसे समझा दीं। चोरी का माल घोड़ों पर लादा गया। दिलैला ने अच्छे कपड़े पहने। वह स्खलीफा को देखने के लिए तैयार हो गई।

"क्या सारा समान लद गया है?" हसन ने पूछा।

"सिवाय अहमद के कपड़ों के सब कुछ दे दिया है। उस चोरी से मेरा कोई वास्ता नहीं है।" दिलैला ने कहा।

"हाँ, हाँ। वह तो किसी दूसरे की करतूत है।" हसन ने हँसते हुए कहा। दोनों मिलकर दरबार में गये।

बुढ़िया को देखते ही खलीफा ने आज्ञा दी कि बुढ़िया का सिर कटवा दिया जाय। जब हसन ने विनयपूर्वक खलीफा को उनके दिये गये वचन के बारे



में याद दिलाई तो उन्होंने दिलैला से पूछा-"तुम्हारा नाम क्या है?"

"मैं उसकी पत्नी हूँ, जो आप के लिये कबूतरों द्वारा डाक भेजा करता था। मेरा नाम दिलैला है।" दिलैला ने कहा।

"तुमने इन सब को क्यों धोखा दिया है?" खलीफा ने पूछा। दिलैला ने खलीफा के सामने साष्टाङ्ग करके कहा-"हुजूर माफ करें। मैंने धन के लालच में आकर चोरी नहीं की है। जब मुझे यह मालूम हुआ कि चोरी में माहिर, अहमद और हसन को अच्छी नोकरियाँ दी हैं, तब मैंने सोचा कि अगर मैं उनसे अधिक चालाकी से चोरी करूँ तो आप मुझे भी वह काम करने देंगे, जो मेरे पति करते आये थे।"

खलीफा ने फरियादियों की चीजें वापिस कर दीं। तब उन्होंने दिलैला से पूछा-" कहो क्या चाहती हो?"

"हुज़ूर मुझे, मेरे पति का काम और उनका वेतन मेहरबानी करके दिखायें। मुझे वह काम अच्छी तरह आता है। मैं और मेरी लड़की ही कबूतरों को भेजा करती थी, उन पर चिट्ठियों को बाँधा करती





थी। कबूतरों द्वारा डाक भेजने के लिये, हुजूर ने एक मकान दिया था; चालीस गुलाम, चालीस शिकारी कुत्ते देकर कबूतरों के पहरे के लिए प्रबन्ध किया था। वह सारा काम मैंने ही करवाया था, न कि मेरे पति ने।" दिलैला ने अर्ज किया।

खलीफा ने तुरन्त हुक्म दिया कि कबूतरों द्वारा डाक भेजने का सारा काम दिलैला को सौंप दिया जाय। गुलाम और शिकारी कुत्ते भी उसे दिला दिये।

दिलैला अपना सारा समान, कबूतरों द्वारा डाक भेजने के लिए, खलीफा ने जो मकान दिया था, उसमें ले गई।

उसी दिन, उसने आदमी की पोशाक पहनी, और सुनहली पगड़ी पर चान्दी का कबूतर लगा, डाक में भेजी जानेवाली चिट्ठियों को लाने के लिए दरबार में गई। चालीस गुलामों को भी उसने जरीदार कपड़े दिलवाये। उसने अपने नये मकान में चालीस खूँटियाँ गड़वाई, और उन पर अहमद, और गुनी अलि और उसके चालीस सिपाहियों के कपड़े सजाकर रख दिये। इस तरह दिलैला ने अपनी इच्छा पूरी कर ली। माँ-बेटी आराम से रहने लगी।

इसके थोड़े दिनों बाद, कैरो शहर से, "पारा" नाम का एक नौजवान बागदाद शहर में आया। वह नाम उसे फबता था, लेकिन उसका नाम अलि था। वह था तो बड़ा खूबसूरत पर पक्का चोर था। आजकल अहमद, जो कोतवाल बना हुआ था, कभी कैरो में चोरी किया करता था। 'पारा' ने भी उसी की तब शागिर्दगी की थी। जब अहमद बगदाद में चोरी करके मशहूर हो गया था और कोतवाल बना दिया गया था, तब 'पारा' कैरो में चोरों का सरदार था। क्योंकि वह

कई बार पकड़ा गया था और हर बार हाथ से निकल गया था, इसीलिये लोग उसको 'पारा' कहकर पुकारा करते थे।

पारा अलि को अहमद ने ही बगदाद बुलाया था। जब से उसे दिलैला के सामने हार माननी पड़ी थी, तब से वह 'पारा' को याद कर रहा था। अगर वह उसके साथ होता, तो उसका इस तरह अपमान न होता, अहमद अक्सर यह सोचा करता। अब वह खुद दिलैला से बदला न ले सकता था। क्योंकि वह उसके समान सरकारी कर्मचारी थी, इसलिये 'पारा' ही उसका कुछ कर सकता था।

"पारा अलि बगदाद पहुँचकर अहमद के घर गया। उसको देखते ही अलि का मन बल्लियों उछलने लगा। "अरे भाई! तुम से मुझे कुछ काम है। उस के होने के बाद, मैं तुम्हें खलीफा के पास ले जाऊँगा और तुम्हें अच्छी नौकरी दिलवा दूँगा।" अहमद ने 'पारा' से कहा। 'पारा' ने अहमद के घर दो दिन बिताये। बाद में, पर में बैठे बैठे उसको ऐसा लगा, जैसे कैद में बन्द



कर दिया गया हो। तीसरे दिन अहमद जब दरबार में गया, तो वह भी घर से खिसक गया। वह घूम-फिरकर शहर देखना चाहता था।

वह थोड़ी दूर गया था कि उसको मर्दों का वेष पहने, सोने की टोपी पर, चान्दी का कबूतर लगाये, घोड़े पर सवार हो एक स्त्री जा रही थी। उसके पीछे चालीस गुलाम, लाल जरीदार कपड़े पहने जा रहे थे। वे सिवाय, दिलैला और उसके नौकरों के कोई न था। वह राज महल से अपने मकान की ओर जा रही थी। दिलैला 'पारा' को देखकर उसके सौन्दर्य से प्रभावित हुई। परन्तु उसको

उसमें अपने दुश्मन अहमद के कुछ हाव-भाव दिखाई दिये। अलि अहमद को हर बात में नकल करने लगा था। दिलैला ने यह भी देख लिया था कि वह अहमद के घर की ओर से ही आ रहा था।

उसने घर जाते ही, अपनी लड़की जीनाव से, उस नौजवान की शकल-सूरत का बयान करते हुए कहा- "हम से बदला लेने के लिए ही अहमद ने इस नौजवान को कहीं से बुलाया है, ऐसा मुझे लगता है। ऐसा भी मालूम होता है कि वह कल परसों ही यहाँ आया है। अब हमें होशियारी से रहना होगा।"

यह सुनकर जीनाव ने कहा-"तुम भी क्या कहती हो माँ। तुमने तो बड़ों को कुछ न समझा। अब इस छोकरे को, जिसके अभी ठीक ठीक मूँछ-दाढ़ी भी नहीं आई है, देखकर घबरा रही है?" भड़कीले कपड़े पहन, आँखों में काजल लगाये, मटकती मटकती वह गली में चली गई।

धीमे धीमे, जब वह एक दुकान पर पहुँची, तो उसको वहाँ 'पारा' दिखाई दिया। माँ ने जो हुलिया बताया था,



'पारा' का हुलिया ठीक उससे मिलता था। जीनाव ने उसे पहचान लिया। उसे धक्का देती हुई, वह आगे बढ़ गई। फिर पीछे मुड़कर पूछा-"आँखें नहीं हैं क्या?"

'पारा' उसके सौन्दर्य को देखकर भौंचक्का रह गया। उसने मुस्कराते हुए पूछा-"क्या खूबसूरत हो... कौन हो तुम?"

"मैं एक व्यापारी की लड़की हूँ। एक और व्यापारी की पत्नी हूँ। आप इस शहर में नये मायम होते हैं। आपका कहाँ ठिकाना है?" जीनाब ने पूछा।

'पारा' चाहता था कि अपने बारे में किसी को कुछ न मालूम हो, इसलिये उसने कहा-"अभी तो कोई ठिकाना नहीं है। कहीं जगह ढूँढ़नी है।"

"ऐसी बात है, तो आइये, हमारे घर ठहरिये। हमारा बड़ा घर है। जब मेरा पति दुकान जाता है, तब मैं अकेली ही रहती हूँ।" जनाब ने कहा।

उसके साथ जाना शायद अच्छा न हो। 'पारा' सन्देह करने लगा। क्योंकि वह शहर में नया था और वह लड़की उसकी दुश्मन भी न हो सकती थी, इसलिये उसने



उसके साथ जाने का निश्चय किया। जीनाब उसको घुमा-फिराकर, एक बड़े मकान के सामने ले गई, और थैले में हाथ डालकर तालों की चाबी खोजने लगी। वह एक बड़े व्यापारी का घर था। फिलहाल उस घर में कोई न था। व्यापारी सवेरे ही घर में ताला लगाकर चला आता था, शाम को अन्धेरा होने के बाद आता। यह जीनाब भली-भाँति जानती थी।

"अरे! चाबी कहाँ गिर गई है? क्या आप इस ताले को खोल सकते हैं?" जीनाब ने 'पारा' से पूछा।

देखते देखते 'पारा' ने ताले को खोलकर रख दिया। जीनाव तुरत समझ गई कि हो न हो, यह पहुँचा हुआ चोर है।

दोनों अन्दर गये। "आप बैठक में बैठिये। मैं कुएँ से पानी लाकर रसोई करती हूँ।" कहती कहती, घड़ा लेकर जीनाब सहन में गई। थोड़ी देर बाद, जीनाब कुएँ से खूब जोर से चिल्लाई। 'पारा' जब कुएँ के पास गया, तो जीनाव कुएँ में झुककर देख रही थी।

"क्या हुआ?"- 'पारा ने पूछा।

"मेरी हीरों की अंगूठी कुँए में गिर गई है। पाँच सौ दीनारें देकर उसे खरीदा था। अगर मेरे पति को यह मालूम हो गया तो वह मुझे मार देगा।" जीनाव ने रोते-धोते कहा।

"तुम घबराओ मत ! मैं उतरकर देखता हूँ।" वह कुँए से एक रस्सी बाँधकर, उसके सहारे कुँए में उत्तर गया। जब उसने पानी में डुबकी लगाई, तो जीनाव ने रस्सी ऊपर खींच ली। "तुझे अहमद आकर ऊपर खींच लेगा।" कहकर जीनाव उसके कपड़े समटेकर घर चली गई।

(अभी और है)





पुण्यात्मा

एक गाँव में बनवारीलाल और रामलाल नाम के दो बूढ़े रहा करते थे। बनवारी लाल का अच्छा खाता-पीता परिवार था। उसके पास २० एकड़ जमीन थी, कई जोड़ी बैल, दालान, घर था। पर राम लाल की स्थिति उतनी अच्छी न थी। उसके पास सिर्फ पाँच एकड़ की जमीन थी। परन्तु दोनों के घर अगल-बगल में थे, और दोनों भाई भाई की तरह रहते थे। वे दोनों चाहते थे कि कभी फुर्सत निकालकर काशी में विशेश्वर महाराज के दर्शन कर आयें। रामलाल को तो हमेशा ही काशी जाने के लिए फुर्सत थी, परन्तु बनवारी लाल को हमेशा कुछ न कुछ लगा रहता। एक साल घर के अगले हिस्से में दूसरी मञ्जिल बनवायी एक और साल उसने पशुशाला बनवाई।

"क्यों बनवारी! कम से कम इस साल काशी चलोगे कि नहीं?" रामलाल ने पूछा।

"अरे यार चले चलेंगे। थोड़ा बहुत पैसा तो जमा-जुटा लेने दो। कम से कम हाथ में सौ रुपये तो होने ही चाहिये। तुम तो जहाँ चाहे, वहाँ पैसे पैदा कर लेते हो।" बनवारी लाल ने कहा।

"तुम बस इतना कह दे कि कल चले चलेंगे, और में रुपये-पैसे का इन्तज़ाम कर दूँगा। तुम्हारे पास तो काफी पैसा है, फिर भी तुम ऐसी बातें कर रहे हो।" रामः लाल ने कहा।

कुछ भी हो बनवारी, रामलाल के कहने-सुनने से तङ्ग आ गया। उस साल उसने काशी जाने की ठानी। वह एक महीने तक अपने लड़के को यह समझाता रहा कि उसकी गैर-हाजिरी में कैसे खेती

श्रीमती मनोरमा सिन्हा

की जाय, कैसे पैदावार बेची जाय, किसे किसे कितना कितना दिया जाय, आदि आदि। सब काम सौंपकर वह एक दिन सुमुहूर्त में काशी के लिए निकल पड़ा।

राम लाल ने अपने पास के दो पशु बनिये को बेच दिये, और उससे सौ रुपये बसूल कर लिये। उसने अपने लड़के को बुलाकर कहा-"बेटा तू तो सब जानता ही है। घर-द्वार के बारे में होशियार रहना। मेरी गैर-हाजिरी में कोई नुकसान न हो।"

बनवारी लाल और राम लाल काशी के लिये चल पड़े। एक महीने तक तो यात्रा अच्छी रही। जहाँ जहाँ उन्होंने पड़ाव किया था तो उन्हें सराय में जगह मिल गयी, नहीं तो किसी के घर खाने-पीने, रहने का इन्तज़ाम हो गया। कइयों ने उनको काशी यात्रा पर जाते देख, रास्ते में खाने-पीने के लिये अच्छे अच्छे पकवान दिये। साथ जो रुपया पैसा लाये थे, उसे खर्च करने का मौका ही न आया।

पर जब विन्ध्य प्रान्त के पास पहुँचे, तो कठिनाइयाँ आने लगी। उस साल उस प्रान्त में वर्षा न हुई। प्रजा भयङ्कर अकाल से पीड़ित थी। कुँए, तालाब, झीलें सब सूख गई थीं।



पीने को पानी भी नसीब न होता था। पानी खरीदना पड़ता था। सरायें बन्द कर दी गई थीं। बहुत पैसे देने पर भी रोटी न मिलती थी।

"जब तक हम इस इलाके को पार कर नहीं जाते, तब तक अधिक पड़ाव करने से काम न चलेगा।" बनवारी लाल ने कहा। रात को दो-तीन घण्टे सोते, फिर वे लोग चलने लगते। भूमि कराह-सी रही थी। कहीं काई न दिखाई देता था। परन्तु दोनों बूढ़े बहुत श्रद्धापूर्वक काशी की तरफ चलते जाते थे।



एक दिन दुपहर को, राम लाल ने बनवारी लाल से कहा-"मुझे बहुत प्यास लग रही है। उस पासवाले घर में जाकर, जरा-सा पानी पी आऊँ।"

"मैं चलता रहूँगा, तुम मुझे आ मिलना।" कहता बनवारीलाल चलता गया। राम लाल ने उस घर के सहन में घुसकर पूछा-"कोई है यहाँ?" कोई जवाब न आया। राम लाल ने घर के अन्दर घुसकर देखा। घरवाले, इधर उधर, बेहोश पड़े थे। वे जिन्दा हैं या मर गये हैं, यह भी राम लाल न जान सका।

घर एक गरीब काश्तकार का था। वह अपनी माँ, पत्नी, लड़का और लड़की का, अपनी एक सेन्ट भूमि में खेती कर निर्वाह करता था। फसल होती तो खाते, नहीं तो फाके करते। अकाल के कारण उनकी बुरी हालत हो गई। इस साल एक दाना भी आनाज न पैदा हुआ था। पहले तो उन्होंने अपनी भैंस बेची। बाद में उन्होंने घर के बर्तन बेचने शुरु किये। घर का सब कुछ बेच दिया। एक सप्ताह से किसी ने कुछ न खाया था। पानी भी न पिया था। जब काश्तकार की माँ घड़ा लेकर पानी भरने गई, तो रास्ते में ही मूर्छित हो गई। घड़ा फूट गया। वह वहाँ से जैसे तैसे घर पहुँची।

परन्तु यह कुटुम्ब अब भी जीवित था। छोटे बच्चे की हालत देखकर तो राम लाल का दिल पिघल आया। उसने सारा घर खोजकर, कहीं एक छीटी-सी लुटिया पाई। कुआँ बहुत दूर था। उस कुएँ से उस लुटिया में पानी लाकर, उसने सबको पिलाया। राम लाल की पोटली में दो तीन रोज़ के लिये काफी रोटियाँ थी। उसने उन्हें पानी में भिगोकर, पहले लड़के

को खिलाया, फिर बड़ों को दिया। एक घण्टे में फिर सब उठकर बैठ सके।

पर अभी आफत खतम न हुई थी। इसलिये राम लाल पास के कस्बे में गया और वहीं से उनके लिये, दो-तीन बर्तन, कुछ चावल, दाल, नमक, मिर्च वगैरह खरीद लाया। आसपास से सूखी लकड़ियाँ भी बटोर लाया। कितने ही दिनों बाद उन्होंने भर पेट भोजन किया।

राम लाल सब के लिये सचमुच राम के समान हो गया। बच्चे तो "बाबा" कहते उसके पीछे लग गये। उनको फिर खेलता-कूदता हँसता-बोलता देख राम लाल फूला न समाया। उस रात को वहाँ से चलकर, उसने बनवारी लाल से मिलने की सोची। पर अगर वह चला जाता, तो इन विचारों का क्या होता? एक और सप्ताह में इनकी हालत वही पुरानी हो जाती। जब वह दृश्य राम लाल को याद आता तो उसे रोमाञ्च होता। दो दिन गुज़र गये। "बाबू! आप हमारी मदद करने भगवान की तरह आये। इस जनम में आपका ऋण न चुका पायेंगे। पर आप हमारी मदद कब तक करते रहेंगे, जब भगवान ने ही हमें छोड़ दिया है?" काश्तकार ने कहा।



"कुछ न कुछ तो करना ही होगा बेटा। जमीन में हल जोतो। हम दोनों हैं ही। खेती करें, सहन में शाक-सब्जी पैदा करें।" राम लाल ने कहा।

"हल और गाड़ी तो कभी का बेच चुका हूँ। जमीन भी ३० रुपये के लिए गिरवी रख दी है। अगर कुछ पैदा भी करूँ तो कर्जदार हड़प ले जायेंगे।" काश्तकार ने कहा। उसी दिन राम लाल, काश्तकार को साथ ले गया और रुपये देकर उसकी जमीन

छुड़वा ली। चालीस रुपये खर्च कर उसने उसके लिए हल, और गाड़ी भी खरीद कर दी। ऐसा लगा मानों काश्तकार और उसके परिवार में नई शक्ति आ गई हो। उनका उत्साह दुगुना हो गया।

तीन महीने बीत गये। खेत में अच्छी फसल लहलहाने लगी। घर के आङ्गन में भी खूब शाक-सब्जी लग रही थी। उसी में से उनकी काफी आय हो रही थी।

"अब में जा सकता हूँ। बनवारी लाल अब तक काशी पहुँच चुका होगा। पुण्यात्मा है।" राम लाल ने सोचा। जब उसने जाना चाहा, तो बच्चे से रोकर कहते-"बाबा तुम मत जाओ।"

राम लाल जान गया कि वे उसको जाने नहीं देंगे। इसलिये एक दिन रात को, अपनी चीजों की पोटली बाँधकर वह निकल पड़ा। हिसाब देखा तो उसके पास केवल १२ रुपये ही रह गये थे। "इस पैसे से मैं काशी तक कैसे पहुँच सकूँगा? इस साल विश्वेश्वर महाराज की पूजा नहीं है।" यह सोच रामलाल वापिस चलने लगा, और एक महीने में घर पहुँच गया।



उस दिन, राम लाल के प्यास बुझाने के लिए जाने के बाद, बनवारी लाल एक मील चलकर, एक पेड़ के नीचे भोजन के लिए बैठा। भोजन के बाद काफी देर तक वह सोता रहा। तब भी राम लाल न आया। बहुत इन्तज़ार करने पर भी जब राम लाल न आया, तो बनवारी लाल को सन्देह हुआ-"कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि जब वह सो रहा था, वह आगे निकल गया हो? पानी के लिए गया हुआ आदमी कैसे घण्टों आए बगैर रहेगा?" यह सोचकर बनवारी लाल अपने रास्ते पर चलने लगा।

सप्ताह गुजरे, महीने गुजरे। बनवारी लाल को राम लाल न दिखाई दिया। फिर भी वह हर गाँव में पूछता जाता-"क्या कोई गञ्जा खोपड़ी वाला आदमी इस तरफ आया था?" पर कहीं कुछ न मालूम हुआ।

आखिर बनवारी लाल काशी पहुँचा। गङ्गा में स्नान कर उसने सब मन्दिरों की परिक्रमा की। फिर वह भगवान विश्वेश्वर का मन्दिर देखने गया। मन्दिर लोगों से खचाखच भरा था। उस भीड़ में, बनवारीलाल मूर्ति के समीप न पहुँच सका। जो सौभाग्यशाली थे, वे नज़दीक से लिङ्ग



का दर्शन कर रहे थे। दियों की रोशनी में उनके मुँह बनवारी लाल को साफ़ दिखाई दे रहे थे। देखता देखता बनवारी लाल चकित रह गया। क्योंकि एक व्यक्ति, जब लिङ्ग को सिर नवा कर उठा, तो उसका गञ्जा सिर चमक रहा था। बनवारी लाल को राम लाल साफ दिखाई दिया। बनवारी लाल बहुत खुश हुआ। "अरे! तुम मुझसे पहले ही आकर अन्दर घुस गये?" उसने मन ही मन राम लाल की प्रशंसा की, और बाहर दरवाजे के पास खड़ा हो गया। पर राम लाल बाहर आता नहीं लगता था। उसने शाम तक प्रतीक्षा की, पर राम लाल बाहर न आया।

काशी में बनवारी लाल तीन दिन ठहरा। एक बार भी वह मूर्ति के समीप न जा सका। परन्तु तीनों दिन उसको मूर्ति के पास राम लाल दिखाई दिया।

बनवारी लाल, गया, प्रयाग आदि देख कर घर की ओर चला। उसे रास्ते में वही घर दिखाई दिया, जहाँ राम लाल पानी पीने गया था। वहाँ पूछने पर राम लाल के बारे में कुछ मालूम हो सकेगा, यह सोचकर, वह काश्तकार के घर गया।

वहाँ बनवारी लाल को राम लाल के बारे में सब कुछ मालूम हो गया। अगर वह उसी घर में तीन महीने रहा हो, तो उससे पहले उसका काशी पहुँचना असम्भव था।

"राम लाल! तुम सचमुच पुण्यात्मा हो। तुम ने यह सिद्ध कर दिया है कि विश्वेश्वर के दर्शन कर पवित्र होने के लिए, काशी तक जाने की जरूरत नहीं है।" सोचता सोचता, बनवारी लाल घर की ओर चलता गया।

[टालस्टाय की एक कहानी के आधार पर]

